

## संस्कृत वाङ्मय में आश्रम कर्त्तव्य : एक अध्ययन



अनु प्रिया  
शोधच्छात्रा  
संस्कृत विभाग  
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार।

इस आश्रम में प्रदेश के पूर्व गुरु को दक्षिणा देकर उनकी अनुमति से स्नानादि के द्वारा समावर्तन संस्कार करके ब्रह्मचर्याश्रम के व्रत-बन्धन से मुक्ति बतलाई गयी है। समावर्तन संस्कार के द्वारा गृहस्थाश्रम में

मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून ।  
जटिलोऽघौतददासोऽरक्तपीठः कुशान् दघत् ॥23 ॥  
स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ।  
नच्छिन्द्यान्नरवरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥24 ॥  
रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतघरः स्वयम् ।  
अवकीर्णोऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदी जपेत् ॥25 ॥  
अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्छुचिः ।  
समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग् जपन् ॥26 ॥  
आचार्यं मां विजानीयान्नवमन्येत कर्हिचित् ।  
न मर्त्यबुद्धयासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥27 ॥  
सायं प्रातरूपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ।  
यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥28 ॥  
शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् ।  
यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृताञ्जलिः ॥29 ॥  
एवं वृत्तो गुरुकुले वसेद् भोगदिवर्जितः ।  
विद्या समाप्यते यावद् बिभ्रद् व्रत मखण्डितम् ॥30 ॥  
यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् ।  
गुरवे विन्यसेद् देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥31 ॥  
अग्नौगुरावाटमनि च सर्वभूतेषु मां परम् ।  
अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्प्यकल्मषः ॥32 ॥  
स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ।  
प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥33 ॥

प्रवेश का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इस संस्कार में हवनादि के बाद स्वयं आठ कलशों से अपना अभिषेक करना पड़ता है। मेखला, दण्ड, कौपीन आदि का परित्याग कर मधु-तिल-प्राशन किया जाता है। मूलर के काष्ठ से दन्तधावन के बाद पुनः मुण्डन करवाना पड़ता है। और तब वर्जित उद्वर्तनादि (उवटन) के बाद स्नान-ध्यान से निवृत्त हो, सज-धज-कर गृहस्थाश्रम में प्रदेश रूप विवाह के लिए आचार्य से अनुमति प्राप्त करता है। घर आकर विधि-पूर्वक विवाह करके वह गृहस्थ बन जाता है।

गृहस्थाश्रम के सम्पूर्ण कृत्यों को सम्पन्न कर भोग-विलास से तृप्त होकर तथा अपने उद्यम से समाज का बहू-दिघ कल्याण कर चुकने पर तृतीय आश्रम वानप्रस्थ में प्रवेश का अधिकारी होता है।

**1. अतिथि-सत्कार :** गृहस्थों का सबसे बड़ा कर्त्तव्य अतिथि-सत्कार था। अर्घ्यादि से पूजाकर<sup>1</sup> उनकी कुशलता पूछी जाती थी।<sup>2</sup> गृहस्थ अतिथि-सेवा की अपेक्षा उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने पर ही संतुष्ट हुआ करते थे। इसलिए इस भावना से प्रेरित होकर कुछ माँगने के लिए उनसे निवेदन भी किया करते थे।<sup>3</sup>

**2. धार्मिक क्रियायें :** गृहस्थों की जितनी भी धार्मिक क्रियायें होती थी; उन सब में पत्नी साथ में रहा करती थी। ऐसा नहीं था कि बिना पत्नी के कोई भी विवाहित पुरुष किसी प्रकार का धर्माचरण कर ले। इसीलिए तो पत्नी के अभाव में उनकी प्रतिकृति को रखकर ही धार्मिक कृत्य किये जाते थे। सीता की अनुपस्थिति में रामचन्द्र ने जब अश्वमेघ यज्ञ प्रारम्भ किया तो उन्होंने यज्ञ की पूर्ति के लिए सीता का स्वर्णमयी मूर्ति बनवायी।<sup>4</sup> स्त्रियाँ अपनी प्रतिकृति तक को भी पति के साथ तक देखना पसन्द नहीं करती थी। सौत की तो बात ही क्या?<sup>5</sup>

**(क). सन्ध्यावन्दन :** सन्ध्यावन्दन गृहस्थों का आहिनक कृत्य था।<sup>6</sup> जिसमें आचमन, मार्जन, प्राणायाम, सूर्यार्घ्यदान, उपस्थान और गायत्रीजप किये जाते थे।

**(ख). तर्पण :** देवता, ऋषि और पितरो की तृप्ति के लिए जलादि के द्वारा तर्पण करना गृहस्थों के लिए आवश्यक कर्त्तव्य था।<sup>7</sup>

**(ग). हवन :** तर्पण के बाद हवन का स्थान था। यह तीन प्रकार के (देव, ऋषि और पितृ) ऋणों में देव ऋण से मुक्ति के लिए किया जाता था।<sup>8</sup>

<sup>1</sup> तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयायी ।

विशाम्पतिर्विष्टरमाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदिव्युवाच ॥ रघु0 5/3

<sup>2</sup> अयग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे! कुशली गुरुस्ते ।

यतस्त्वया ज्ञानमेशेषमाप्तं लोकेन चैतन्य भिवोष्णरश्मेः ॥ वहीं, 5/4

<sup>3</sup> तवार्हतो नामिगमेन तृप्तं मनो नियोग क्रिययोत्सुकं मे ।

अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनान्माम् ॥ वहीं, 5/11

<sup>4</sup> श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः ।

अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जाया हिरण्मयी ॥ रघु0 15/61

<sup>5</sup> सीतां हित्वा दशमुखरि पुर्नोपयेमे यदन्यां

तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार ।

वृत्तान्तेन श्रवणविषय प्रापिणा तेन भर्तुः

सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥ वहीं, 14/87

<sup>6</sup> विधेः सायन्तमस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।

अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ॥ वहीं, 1/56

<sup>7</sup> ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतभागप्रसवैः स पार्थिवः ।

अनृणत्वमुपेयिवान्चमौ परिधेर्मुक्तइवोष्णदीधितिः ॥ वहीं, 8/30

<sup>8</sup> देखिए, पादटिप्पणी, नं0 4, रघु0 8/30

(घ). **स्वाध्याय** : ऋषि ऋण से मुक्ति के लिए गृहस्थाश्रम में वैदिक स्वाध्याय करना दैनिक कर्तव्य था। कवि ने उन तीन ऋणों का उल्लेख कर संकेत कर दिया है।<sup>9</sup>

(ङ). **पञ्चमहाभूत** : ब्रह्म, पितृ, भूत तथा मनुष्य के उद्देश्य से किये जाने वाले यज्ञ पञ्चमहायज्ञ कहे जाते थे। मनु के अनुसार ऐसी मान्यता थी कि गृहस्थों से पाँच प्रकार के पाप अनायास भी होते रहेंगे। अतः इन पापों से निवृत्ति के लिए पञ्चमहायज्ञ का विधान था। ये पाँच—चूल्हा जलाने, जाँता—सिलवट का व्यवहार करने, झाड़ू देने, ओखल से धान्यादि कूटने एवं घड़े रखने के स्थान पर छोटे-छोटे जीवों की हत्या से सम्भव थे।<sup>10</sup> अतः क्रमशः उनके पापों के मार्जन वेद का अध्ययन या अध्यापन (ब्रह्म—यज्ञ), तर्पण (पितृ—यज्ञ), हवन (देव—यज्ञ), बलि = (बल वैश्वदेवं (भूत—यज्ञ) और अतिथि—सत्कार (मनुष्य—यज्ञ) होते थे।<sup>11</sup>

इसके अतिरिक्त संक्षपतः धर्म्य मार्ग (कृषि, गो सेवा या व्यापारादि) से जीविकोपार्जन, पुत्र प्राप्ति, परिवार का भरण—पोषण एवं सामाजिक कृत्य भी इनके आवश्यक कर्तव्य थे।

**वानप्रस्थ** : बार्धके मुनिवृत्तीनां (रघु0 1/8) लिखकर कवि ने वानप्रस्थाश्रम के महत्व को तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में वानप्रस्थाश्रम के प्रचलन को व्यक्त किया है। जिस आश्रम के ग्रहण करने के लिए भोग—विलास से विरक्ति, पुत्रादिकों का पारिवारिक उत्तरदायित्व वहन करने की योग्यता तथा शरीर पर झुर्रिया पक्के बाल एवं पौत्र का सुख दर्शन आवश्यक होते थे; उसके ग्रहण करने के लिए पत्नी को साथ रखना वैकल्पिक था। किन्तु ईश्वर में मन लगाना आवश्यक था। यद्यपि उस समय के सभी द्विजाति—मात्र इस आश्रम को ग्रहण करते ही थे यह तो सिद्ध नहीं हो पाता; किन्तु “इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय राजकुल कुलव्रत के रूप में इसे अवश्य शिरोधार्य मानकर पूर्ण मनो—योग से इसे सुल बनाते थे।” यह स्पष्ट है।<sup>12</sup>

भारतीय—परम्परा में पायी जाने वाली संस्कृति को देखकर मानव—समाज दाँतों तले अङ्गी दबा लेता है। जिसके लिए विशाखदत्त ने हजारों वर्ष पहले कहा था— कि दुःख के बाद सुख की अनुभूति में जो मिठास मिलता है; उसके सामने स्वर्ग—सुख भी महत्त्वहीन मिलता है; उसके सामने स्वर्ग—सुख भी महत्त्वहीन हो जाता

<sup>9</sup> ऋषिदेवगण स्वाधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः।

अनृणत्वमुपेयिवान्बमी परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः।। रघु0 8/30

<sup>10</sup> पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्लीवेषण्यु परस्करः।

कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्।। मनु0 3/68

<sup>11</sup> तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।

पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्।। वहीं, 3/69

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।

होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।। वहीं, 3/70

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं

विजयिनममिनन्द्य श्लाघ्यजायासमेतम्।

तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू-

न्निहि सति कुल धुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय।। (रघु0) वहीं, 8/71

<sup>12</sup> अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे

नृपतिककुदं दत्त्वायूने सितातपवारणम्।

मुनिवनतरुच्छायां देव्या तथा सह शिश्रिये

गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्।। रघु0 3/70

गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः।

पदवीं तरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रवेदिरे।। वहीं, 8/11

पिता पितृणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानिलिप्सुः।

राजानमाजानुविलम्बि बाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव।। वहीं, 18/26

है। और ठीक इसके विपरीत यदि सुख की अनुभूति के बाद दुःख के पल्ले पड़ना पड़ता है; तो वह जीवन भी जीते जी नरक के समान है।<sup>13</sup>

किन्तु जब हम यहाँ की आश्रम व्यवस्था पर दृष्टिपात करते हैं तो लगता है कि इस प्रकार की उक्तियाँ भारतीय-परम्परा का उपहास कर रही हैं। क्योंकि भारतीय-परम्परा में विकसित, यहाँ का आदर्श, “विशाल-वैभव के सुखानुभूतियों को छोड़कर, स्वयं नानाविध कष्टमय वातावरण में अट्टालिका से जाकर एकान्त अरण्य का वरण करता हुआ” विषयासक्त मानव कहलाने वाले जीवों के लिए आश्चर्यजनक ही तो है।

इस प्रकार की कठोर तपश्चर्या के लिए संकल्प लेना ही उसके कृतित्व का परिचायक होता है। और तब उसने सांसारिक कृत्यों को संकल्प मात्र से सम्पादित कर लिया, इस अर्थ में सिद्धवत् मानकर कृती की संज्ञा दी जाती है।<sup>14</sup>

### वानप्रस्थो के रहने का स्थान :

यह आवश्यक नहीं कि तपोवन या जंगल में ही रहें। यह तो उनकी वैयक्तिक इच्छा पर निर्भर था कि वे नगर के बाहर कुटिया बनाकर रहे<sup>15</sup> या कहीं तपस्वियों के आश्रम में रहने की इच्छा से अरण्य की शरण लें।<sup>16</sup> विक्रमोर्वशीय में भी यह अर्थ समर्पित है।<sup>17</sup> उनकी कुटिया को देखने से यह स्पष्ट भासित होता था कि उन्होंने अपने शरीर को तपाकर स्वर्ण बनाने के लिए अपनी इच्छा से इसे वरण किया है। केवल आवश्यक जीवन निर्वाह के साधन उस कुटिया में पाये जा सकते थे। जैसे सोने के लिए कुश की चटाई पर मृग चर्म, दीख जाते तो प्रकाश के लिए इङ्गुदी के तेल का दीपक<sup>18</sup> वहाँ भी अहर्निश अध्ययनाध्यापन के बाद कुश की चटाई

<sup>13</sup> सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते,  
धनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

सुखान्तु यो याति नरो दरद्रिता,  
घृतः शरीरेणमृतः स जीवति ॥ मृ0क0, 1/10

<sup>14</sup> पिता पितृणामनृणस्तमन्ते व्यस्यन्तानि सुखानि लिप्सुः।  
राजानमाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव ॥ रघु0 18/26

<sup>15</sup> स किलाश्रममन्व्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः।  
समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया ॥ रघु0 8/14

<sup>16</sup> अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनुवे,  
नृपतिक कुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम्।  
मुनिवनतरुच्छायां देण्या तया सह शिश्रिये  
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रत्तम् ॥ वहीं, 3/70

<sup>17</sup> अहमपि तव सूनावध विन्यस्य राज्यं विचरति-मृगयूथान्याश्रयिष्ये वनानि। विक्रमो0 5/7

<sup>18</sup> ता इङ्गुदीस्नेहकृत प्रदीपमास्तीर्जमेध्याजिनतल्पमन्तः।  
तस्यै सपर्यानुपदं निनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः ॥ रघु0 14/81

पर रात बिता दी जाती थी।<sup>19</sup> वे इस अध्यवसाय में पेड़ की जड़ का आश्रय लेकर भी रात गुजार दिया करते थे।<sup>20</sup>

**अवस्था :** प्रायः पचास के लगभग मानी जाती थी।<sup>21</sup>

**वानप्रस्थ के वेश-भूषा :** वस्त्र के स्थान पर बल्कल, शय्या के स्थान पर मृग-चर्म व्यवहृत होते थे।<sup>22</sup>

इस प्रकार वेश-भूषा से वे वस्तुतः तपस्वी या संन्यासी लगते थे। पर बात ऐसी न थी। तपस्वी की अवस्था तो इसके बाद की अवस्था आती थी। यह तो उस अवस्था तक पहुँचाने का साधन-मात्र थी।

**भोजन :** वन के शुद्ध कन्द-मूल और फल शरीर निर्वाह मात्र के साधन होते थे। सादा भोजन और सादा-वेश उनके सादे जीवन के उच्च विचार के समर्थक थे।<sup>23</sup>

**अन्य कार्य :**

**पञ्चाग्नि सेवन :** चारों दिशाओं में चार अग्नि रखकर ललाटन्तप सूर्य को देखना, यह ग्रीष्म काल की क्रिया होती थी।<sup>24</sup> शीत काल में सम्पूर्ण रात्री भर जल में रहना<sup>25</sup>, तथा वर्षा काल में चट्टानों पर सो जाना<sup>26</sup>, उषः काल में विद्याध्ययन क्रमशः समित् कुश-फल-मूल लाने के लिए दूसरे-दूसरे जंगलों तक जाना और सायं काल तक उन्हें लेकर लौट आना।<sup>27</sup> मृगादि के भोजन नीवारादि की व्यवस्था<sup>28</sup> तथा पक्षियों के जल पीने का प्रबन्ध<sup>29</sup> एवं पेड़-पौधों का सेवन<sup>30</sup>, मितभाषित या मौन रहना<sup>31</sup>, कठिन तपस्या के लिए पेड़ों में उलटा टंग

<sup>19</sup> निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशाला

मध्यास्य प्रयतपरिग्रह द्वितीयः।

तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां

संविष्टः कुशशयने निशां निनाय ॥ रघु0 1/95

<sup>20</sup> नियतैकपतिव्रतानि पश्चात्तरुमूलानि गृही भवन्ति तेषाम् अभि0 7/20

<sup>21</sup> गृहस्थास्तु यदा पश्येद्दलीपलितमात्मनः।

अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽरण्यं समाश्रयेत्। मन0 6/2

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।

ब्रह्मचार्यैव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् ॥ वहीं, 3/50

<sup>22</sup> वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ 11/18/2

गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः।

पदवीं तरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे ॥ रघु0 8/11

पिता पितृणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः।

राजानमाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कल वान्बभूव ॥ वहीं, 18/26

<sup>23</sup> कन्दमूलकफलैर्वन्यैर्मध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत्। भागवत, 11/18/2

<sup>24</sup> हविर्भुजामेघवतां चतुर्णां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः। रघु0 13/41

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजांशुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा

विजिव्य नेत्र प्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्ष ॥ कु0स0 5/20

<sup>25</sup> निनाय साऽव्यन्तहिमोत्किराऽनिलाः सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा।

परस्परक्रान्दिनि चक्रवाकयोः पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती ॥ कुमार0 5, 26

<sup>26</sup> शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तर वातवृष्टिषु।

व्यलोकयन्नमुन्मिषितैस्तऽन्मयैर्महातपः साक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः ॥ कु0स0 5/15

<sup>27</sup> वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।

पूर्यमाणमदृश्याग्निं प्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः ॥ रघु0 1/49

<sup>28</sup> अरण्यबीजाऽज्जलिदानलालितास्तथा च तस्या हरिणा विशश्व यथा तदीयैर्नयनैः कुतुहलात् पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥ कु0सं0 5/15

आकीर्णमृषित्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।

अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः ॥ रघु0 1/50

<sup>29</sup> विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम्। रघु0 1/51

जाना और नीचे जली आग का धुआ पीकर रहना है<sup>32</sup>, अग्नि में हवन के साथ-साथ अपने शरीर तक की आहुति दे देना।<sup>33</sup> इस प्रकार अपने शरीर को तप-तपाकर संन्यासाश्रम के योग्य बना देते थे।

**संन्यासाश्रम** : यह सबसे अन्तिम चौथा आश्रम है। कवि ने इसे अन्त्य आश्रम कहा है।<sup>34</sup> वानप्रस्थ और इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। वानप्रस्थ में योग साधना या वैराग्य का अङ्कुरण होता है तो संन्यास में उसके फल का परिपाक। इसमें मोक्ष के साधन तत्त्वों की चिन्ता<sup>35</sup>, कुशासन पर बैठकर मन को एकाग्र करना<sup>36</sup>, इन्द्रियों को वश में करना<sup>37</sup>, “न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्त चा प्रियम्” गीता के अनुसार समालोष्टाश्रम काञ्चन होते थे।<sup>38</sup> भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा (श्री मद्भागवत् 11/18/42) के अनुसार भगवन्निष्ठा तथा अहिंसा का स्वयं ऐसा निदर्शन बन जाते थे। जिससे “हिंसक जीव या उनके पास आते ही अपनी हिंसक भावना से मुक्त होकर मित्र बन जाते थे।<sup>39</sup>

मनु ने जिस वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की थी, उसके पालन का उत्तरदायित्व कवि की दृष्टि में तत्कालीन राजाओं पर भी था। वे वर्णों के रक्षक तो थे ही आश्रमों का भी पालन अपना धर्म समझते थे।<sup>40</sup>

<sup>30</sup> सेकान्ते मुनिकन्यामिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ।

विश्वासाय विहङ्गनामालवालाम्बुपायिनाम् ॥ रघु0 1/51

<sup>31</sup> वाचंयमत्वात्प्रणति ममैष कम्पने किचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।

दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्रां पुनः सहस्रार्चिसि संनिधत्ते ॥ रघु0 13/44

<sup>32</sup> अथ धूमामिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनम् ।

ददर्शकञ्चिदक्ष्वाकस्तपस्यन्तमधोमुखम् ॥ वहीं, 15/49

<sup>33</sup> अदः शरण्यं शरमङ्गनाम्नस्तपो वनं पावमाहिताग्नेः ।

चिराय संतर्प्य समिद्भिर्भग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥ वहीं, 13/45

<sup>34</sup> स किलाश्रममन्व्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुरद्वहिः ।

समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया ॥ वहीं, 8/14

<sup>35</sup> अजिताधिगमाय मन्त्रिमिर्युजे नीतिवशारदैरजः ।

अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः ॥ वहीं, 8/17

<sup>36</sup> नृपतिः प्रकृतीरवक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।

परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तुविष्टरम् ॥ रघु0 8/18

<sup>37</sup> इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ ।

प्रसितावृदयापवर्गपोरुमयीं सिद्धिमुभाववापतुः ॥ वहीं, 8/23

<sup>38</sup> पणबन्धमुखान्मगुणानजः षडुपायुडक्त समीक्ष्य तत्फलम् ।

रघुरप्यजयद्गुजत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः ॥ वहीं, 8/21

<sup>39</sup> अहिंसा – प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः पा0यो0सू0

<sup>40</sup> नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।

निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥ रघु0 14/67